साहित्य और सिनेमा का अंत :संबंध

जब से सिनेमा का जन्म हुआ है, तभी से साहित्य के साथ सिनेमा का एक गहरा संबंध रहा है। वैसे तो साहित्य और सिनेमा दो स्वतंत्र विधाएं हैं। बहुत से विद्वानों ने तो सिनेमा को एक विधा मानने से ही इनकार कर दिया, दूसरी ओर सिनेमा को कई विद्वानों ने कला का दर्जा दिया है। सिनेमा पढ़े लिखे और अनपढ़ दोनों प्रकार के लोगों के मनोरंजन का साधन है। श्री रवींद्र कात्यायन ' सिनेमा विद्या ' के बारे में कहते हैं “सिनेमा बहुत सशक्त विधा है जो स्वयं में संपूर्ण है, परंतु इसका सर्जन साहित्य के समान स्वान्त सुखाय या व्यक्तिगत संतुष्टि के लिए नहीं किया जा सकता। यह एक सामूहिक रचना है। यह सिर्फ शब्द नहीं है बल्कि अभिनय, कथा, पटकथा, संवाद, ध्वनि, खान - पान, वेशभूषा, परिवेश, गीत - संगीत और लोकेशन आदि सभी घटकों का बहुत सार्थक और रोचक संगुफन है, और यह संगुफन करता है कैमरा। कैमरा ही वह खिड़की है जो इन घटकों में संगुफन करके हमारे सम्मुख एक सामूहिक कृति प्रस्तुत करता है। सिनेमा रंगमंचीय गुणों से युक्त नृत्य, गीत - संगीत के तत्वों से भरपूर आधुनिक तकनीक से परिपूर्ण जीवन के विविध पक्षों को बड़े कैनवास पर प्रस्तुत करने वाला एक प्रभावशाली माध्यम है। सिनेमा में कैमरा अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, सिनेमा में प्रस्तुतीकरण और तकनीक महत्वपूर्ण साधन हैं, जो सिनेमा को एक विराट फलक प्रदान करते हैं।

 वहीं साहित्य शब्द का अर्थ है - सबका हित करने वाला। साहित्य समाज को गलत रास्ते से निकालकर अच्छे रास्ते पर चलने की ओर प्रेरित करता है। साहित्य समाज का दर्पण होता है। साहित्य में सामाजिक समस्याओं को उजागर करके उनका समाधान ढूंढ़ने का प्रयास किया जाता है। वहीं समाज, सिनेमा को देख कर अपनी आदतें बना रहा है। सिनेमा में जो फ़ैशन दिखाई देता है, समाज का युवा वर्ग उसी का अनुसरण करता है। सिनेमा का साहित्य से अटूट रिश्ता रहा है। साहित्य और सिनेमा दोनों ने अपने- अपने तरीके से अपनी- अपनी जिम्मेदारी निभाई और समाज और देश के विकास में अपना योगदान दिया। साहित्य और सिनेमा दोनों ही जनमानस के भावों और विचारों की अभिव्यक्ति के बड़े शक्तिशाली माध्यम हैं । यह दोनों अलग होते हुए भी एक दूसरे के पूरक, पोषक और साथी रहे।

 साहित्य और सिनेमा लेख में डॉ. प्रमोद पडवल जी लिखते हैं कि “साहित्य और सिनेमा मानवीय अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के साधन हैं । समयानुरूप अभिव्यक्ति के बदलते उपादानों के यह सोपान माने जा सकते हैं। साहित्य और सिनेमा एक दूसरे के समानांतर नहीं कहे जा सकते क्योंकि, साहित्य हजारों सालों से प्रचलित विधा है जबकि, सिनेमा का उद्भव बीसवीं सदी में हुआ है । सिनेमा के उद्भव काल से ही साहित्य से उसके संबंध की चर्चा शुरू हुई पर दोनों के संबंध अधिकतर विवादास्पद ही रहे। हालांकि दोनों का संबंध संस्कृति, सभ्यता, मूल्यों से रहा है लेकिन दोनों अलग-अलग माध्यम होने के कारण उनमें अंतर रहना स्वाभाविक है।” अधिकांश फिल्में ऐसे चरित्रों और घटनाओं पर आधारित होती हैं जो जनमानस के बहुत अधिक निकट हैं इनमें पुरानी कथाएं और लोक कथाएं होती हैं , देश-विदेश में घटित समसामयिक घटनाएं होती हैं और भविष्य के संकेत भी छिपे होते हैं। अर्थात् सिनेमा अतीत एवं वर्तमान के साथ-साथ भविष्य के आकलन का प्रयास भी करता है। समाज भी जड़ नहीं होता और उसमें आमूलचूल परिवर्तन होता रहता है । साहित्य का गुणधर्म समाज के इन परिवर्तनों इत्यादि को रेखांकित करना है। अतः परिवर्तनशील समाज की तरह साहित्य में भी जीवन - जगत के नए क्षितिज तलाशते रहते हैं। इसी क्रम में वह साहित्य से सामग्री लेता है जिन्हें साहित्य समाज से ग्रहण करता है। अर्थात सिनेमा साहित्य और समाज एक- दूसरे पर निर्भर हैं एवं इन का परस्पर अन्योनाश्रित, घनिष्ठ, परंतु जटिल संबंध है एक प्रकार से सिनेमा साहित्य का एक्सटेंशन ही है । डॉ. अनीता नेरे के अनुसार “ सिनेमा का साहित्य से अटूट संबंध है। सिनेमा साहित्य की उपेक्षा नहीं कर सकता क्योंकि, साहित्य उसका मेरुदंड है जिस पर उसका सारा ढांचा खड़ा है।" सिनेमा में साहित्य का महत्व बताते हुए विजय अग्रवाल जी लिखते हैं “ सत्यजीत रे उन फिल्मकारों में थे जिन्होंने साहित्य पर सबसे अधिक फिल्में बनाई। फिल्में अपने समाज के लिए सही भूमिका तभी निर्वाह कर सकेंगी जब वे साहित्य का साथ और साहित्य के संस्कार लेकर चलेंगी। अतः सिनेमा का साहित्य से सीधा रिश्ता है। सिनेमा को साहित्य से अपने संबंध सौहार्दपूर्ण रखने चाहिए। स्पष्ट है कि सिनेमा अपनी सामाजिक भूमिका तभी निभा सकेगा जब वह साहित्य का आधार और साहित्य के संस्कार लेकर चले। सिनेमा और साहित्य का संबंध वर्षों पुराना है। साहित्य में मानव कल्याण की कामना होती है, उसमें समाज का प्रतिबिंब होता है। साहित्य परिवर्तनकामी होता है। उसमें क्रांति की अवधारणाएं होती है। साहित्य एक ‘शब्दविधा’ है इसलिए उसकी अनिवार्यता ‘भाषा’ है। साहित्य एक पूर्ण एवं आत्मनिर्भर विधा है, उसे पाठक की जरूरत होती है। सिनेमा कला के अनेक माध्यमों में से सबसे प्रभावशाली और सशक्त माध्यम है। सिनेमा के दर्शक पढ़े - लिखे अनपढ़ सभी होते हैं। सिनेमा का मुख्य उद्देश्य मनोरंजन करना है। जीवन के विविध पहलुओं को सिनेमा प्रस्तुत करता है और हमारे विचारों का विरेचन भी करता है। साहित्य और सिनेमा का अंतः संबंध फिल्मों के मूक युग से ही शुरु होता है। साहित्य और सिनेमा एक - दूसरे को समृद्ध करने वाला कला माध्यम है। साहित्य सिनेमा को आधार प्रदान करता है तथा सिनेमा साहित्य को आम लोगों तक पहुंचाता है। सिनेमा ने साहित्य का भला ही किया है। सिनेमा ने साहित्य को भारत के घर- घर में पहुंचा दिया है। साहित्यिक रचनाओं को आधार बनाकर अनेक फिल्मों एवं धारावाहिकों का निर्माण किया गया। हिंदी की साहित्यिक कृतियों पर फिल्म बनाने का चलन अभी भी बरकरार है। सिनेमा का साहित्य से अटूट संबंध है। सिनेमा साहित्य की उपेक्षा नहीं कर सकता क्योंकि, साहित्य उसका मेरुदंड है। दोनों का उद्देश्य एक है। साहित्य समाज बदलाव का कारण है तो सिनेमा भी कुछ हद तक बदलाव का काम करता है।” साहित्य सिनेमा को स्टोरी के रूप में कथावस्तु प्रदान करता है, वास्तविक घटनाओं के कुछ अंश डालकर उसमें कुछ आदर्श भावों को प्रस्तुत कर उसे जनता के देखने योग्य बनाने में मदद करता है और उदात्त भावों की संरचना के लिए प्रेरित करता है। सिनेमा की कथावस्तु का आधार सिर्फ उपन्यास ही नहीं होता है अपितु साहित्य की अन्य विधाएं जैसे नाटक, कहानी, कविता, संस्मरण, रेखाचित्र,जीवनी, आत्मकथा इत्यादि भी हो सकता है। इसी प्रकार सिनेमा फिल्मों के रूप में में साहित्य के उद्देश्य को लोगों के दिलों तक पहुंचा सकता है। डॉ. चंद्रकांत मिसाल के अनुसार “ सिनेमा और साहित्य का संबंध वर्षों पुराना रहा है । जहाँ सिनेमा वैज्ञानिक युग की देन है तो वहीं साहित्य हमारी पीढ़ियों और पुरखों की धरोहर है। सिनेमा आधुनिक कला और कैमरे से व्यक्ति और चीजों को चलता- बोलता दिखाने में सक्षम रहा, तो साहित्य एक ठोस धरातल की तरह उसे मदद करता रहा। एक अत्यंत आधुनिक कला और एक अत्यंत पुरातन कला ने मिल कर इतिहास रचा और जनता जनार्धन को समृद्ध किया। इनके संबंधों में मधुरता और कटुता दोनों रही, पर फिर भी दोनों का उद्देश्य एक था। इसलिए दोनों साथ- साथ चल सके। एक ने सार्थकता दी तो दूसरे ने उसे उसके लक्ष्य को प्राप्त करने में मदद की।" हालांकि साहित्य और सिनेमा दो अलग-अलग विधाएं हैं, दोनों की निर्माण प्रक्रिया और तकनीक अलग अलग है। इस अंतर के बावजूद भी फिल्में साहित्य से जुड़ी हुई हैं। लोकप्रिय रचनाओं और कालजयी रचनाओं पर आधारित फिल्में हमेशा पसंद की जाती रही हैं। जहां साहित्य दुनिया की प्राचीनतम कलाओं में से एक है वहीं सिनेमा, आधुनिक एवं नवीनतम कलाओं में से एक सशक्त कला है। प्रारंभ से ही सिनेमा के समाज पर सकारात्मक और नकारात्मक दोनों प्रकार के प्रभाव पड़े हैं। साहित्य की तुलना में सिनेमा व्यावसायिक माध्यम अधिक है पर अपने प्रयोजन में दोनों ही सामूहिक माध्यम हैं। सिनेमा साहित्यिक रचना का फिल्मांकन कर समाज के सामने प्रस्तुत करता है। सिनेमा दृश्य- श्रव्य माध्यम होने के कारण समकालीन दौर की एक ऐसी विधा है जो अपने मंचन और प्रस्तुति में समाज के सबसे अधिक निकट है। इस संदर्भ में उमेश राठौर जी लिखते हैं “चलचित्र और साहित्य में गहरा अंतर्संबंध है। चलचित्र विद्या के अध्ययन के बिना साहित्य के अध्ययन की बात उपहास- सी लगती है। वास्तव में देखा जाए तो नाटक एवं समाज का परिवर्तित रूप ही चलचित्र है तथा चलचित्र विधा के अध्ययन के बिना साहित्य के अध्ययन की बात उपहासकारी लगती है। वास्तव में देखा जाए तो नाटक एवं रंगमंच का परिवर्तित रूप ही चलचित्र है तथा चलचित्र का कथानक उपन्यास से अत्यधिक प्रभावित रहा है सिनेमा में आज जो फ्लैशबैक दिखाया जाता है यह उपन्यास की ही देन है।"

 साहित्यकार कहीं-कहीं अपनी कृति में बदलाव को लेकर दुखी हुआ तो कभी जन-जन तक पहुंचने से खुश भी हुआ । आज के इस मूल्य - रहित और मूल्य पतन के युग में अगर सिनेमा और साहित्य साथ मिलकर चलें तो वाकई एक जबरदस्त ताकत के रूप में उभरकर नए युगबोध का कार्य कर सकते हैं। साहित्य को समाज के साथ सिनेमा प्रस्तुत करें और सिनेमा को साहित्य उसका रूप प्रदान करें तो दोनों ही अपने लक्ष्य अर्थात नाम और दाम के साथ बहुजन हिताय का कार्य कर सकेंगे और सामाजिक मूल्य निर्धारण में अपना योगदान देंगे और दे भी रहे हैं।

 दुनिया भर में सबसे लोकप्रिय फिल्मों में से लगभग आधी फिल्में साहित्य के आधार पर ही लोकप्रिय हुई हैं। सिनेमा ने समय-समय पर समाज को नया मोड़ देने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। साहित्य के पास भी सिनेमा की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अथाह भंडार है। सिनेमा को जब सामग्री की आवश्यकता महसूस हुई तब साहित्य ने खुले मन से उसका सहयोग दिया है यदि हम शुरुआती सिनेमा की ओर नजर दौड़ाएं तो पाते हैं कि सत्य हरिश्चंद्र , भक्त प्रल्हाद, लंका दहन, अयोध्या का राजा जैसी प्रारंभिक दौर की फिल्में धार्मिक ग्रंथों की कथाओं पर ही अंकित थी। सिनेमा ने साहित्य के अनेक साहित्यकारों को भी अपनी ओर आकर्षित किया। प्रेमचंद और अश्क भी सिनेमा से जुड़े परंतु मोहभंग के बाद वापिस साहित्य की दुनिया में लौट आए। इनके अतिरिक्त भगवतीचरण वर्मा, राही मासूम रजा उदय प्रकाश जैसे रचनाकारों को भी वहां से निराश होकर लौटना पड़ा। साहित्यकारों की यह निराशा की स्थिति गीत कारों के साथ इतनी अधिक नहीं रही। नरेंद्र शर्मा और नीरज जैसे साहित्यकार हिंदी में गीत लिखने लगे। साहित्यकारों के मोह- भंग का मूल कारण फिल्मकारों द्वारा साहित्यिक कथानको की संवेदनाओं में परिवर्तन करना था। साहित्यकार अपनी रचनाओं में जरा सी भी कांट - छांट बर्दाश्त नहीं कर पाता। साहित्यकार यह भूल जाता है कि सिनेमा और साहित्य दो अलग-अलग विधाएं हैं और दोनों के उपभोक्ता एक जैसे नहीं हैं। साहित्य को पढ़ने वाले पढ़े-लिखे गुनी जन हैं, तो वहीं सिनेमा को देखने वाला एक आम शहरी या ग्रामीण या सुदूर क्षेत्र में रहने वाला एक आम नागरिक भी हो सकता है जो पढ़ा लिखा भी हो सकता है और अनपढ़ भी हो।सकता है। सिनेमा साहित्य की तुलना में बहुत महंगा साधन है। सिनेमा मुख्य रूप से एक व्यवसाय है जबकि साहित्य का मुख्य उद्देश्य समाज - सेवा है। सिनेमा में बजट एक प्रमुख घटक है। निर्माता - निर्देशक जितना पैसा फ़िल्म में लगाता है उससे कहीं अधिक वह मुनाफा भी कमाना चाहता है जिसके लिए वह साहित्य से ली गई सामग्री में खूब बदलाव करता है और उसमें खूब मिर्च - मसाला डालकर उसे बड़े पर्दे पर प्रस्तुत करता है। फिल्मकारों को साहित्यिक कृति पर आधारित फिल्मों को बनाते समय यह विशेष ध्यान रखना चाहिए कि कृति की मूल संवेदना नष्ट न हो, लेखक की सलाह से ही उसमें यथा संभव बदलाव करने चाहिए। फ़िल्मकार और साहित्यकार दोनों एक दूसरे के साथ काम करते हुए एक दूसरे की भावनाओं का सम्मान करते हुए दोनों विधाओं के उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए कार्य करें तो दोनों एक दूसरे के लिए सहायक और पूरक सिद्ध हो सकते हैं। सिनेमा और साहित्य के इस संबंधों पर डॉ. कुसुम अंसल कहती हैं “ पुस्तक और फिल्म दोनों के मध्य खड़े होकर मुझे लगा कि पुस्तक एक बंद दरवाजा है, जिसके पृष्ठ खोलने पर हाथ लगते हैं उनके दृश्य। वे दृश्य जहाँ फूल खिल रहे हैं, सूर्य उग रहा है, चांद आकाश पर टंगा है और फिल्म एक ऐसा द्वार है, जहां खोलने को कुछ नहीं है, सभी कुछ आंखों के सम्मुख, सामने घटित होता हुआ। उपन्यास पर बनी हुई फिल्म कुछ ऐसी होती है कि झरने के ऊपर से कोई पत्थर उठा दे और झरना प्रपात बन जाए या एक ऐसा दरवाजा जो बाहर भीतर के दृश्य को समूची लैंडस्केप प्रदान करने में सफल हो जाए। आज के संदर्भ में सिनेमा ही एक ऐसा मीडिया है जिसके माध्यम से अपनी बात हर वर्ग तक पहुंचाई जा सकती है, यह बात अलग है कि उसका विवेचन या इंटरप्रटेशन सबका अपना-अपना होता है।” यहाँ यह स्पष्ट होता है कि सिनेमा साहित्य का उद्धार करने वाली एक कला है।

 सिनेमा के आरंभ से ही साहित्यिक कृति पर आधारित फिल्मों का निर्माण किया गया। यदि हम शुरुआती सिनेमा की ओर नजर दौड़ाएं तो पाते हैं कि सत्य हरिश्चंद्र, भक्त प्रल्हाद, लंका दहन, अयोध्या का राजा, सैरन्ध्री जैसे प्रारंभिक दौर की फिल्में धार्मिक ग्रंथों की कथाओं का ही अंकन थी। सिनेमा ने साहित्य के अनेक साहित्यकारों को अपनी ओर आकर्षित किया इन साहित्यकारों ने फिल्मों के लिए पटकथाएं लिखी। अथवा कई लेखकों के उपन्यासों, नाटकों, कहानियों आदि का फिल्मों में रूपांतरण हुआ। धार्मिक, पौराणिक ऐतिहासिक विषयों से संबंध फिल्मों के निर्माण के समानांतर सामाजिक और राष्ट्रीय विषयों पर भी उम्दा फिल्मों का निर्माण हुआ। ‘मंटो ' की लेखनी से किसान कन्या , मिर्जा गालिब, बदनाम जैसी फिल्में निकली। ‘फणीश्वर नाथ रेणु ' की कहानी पर 'मारे गए गुलफाम' उर्फ 'तीसरी कसम' जिस पर फिल्म ‘तीसरी कसम' मुंशी प्रेमचंद के उपन्यास 'गोदान', 'गबन', 'रंगभूमि' पर फिल्में बनी तथा 'कोहबर की शर्त' जिस पर 'नदिया के पार' फिल्म बनी । प्रेमचंद की कहानी 'शतरंज के खिलाड़ी' पर सत्यजीत राय ने इसी नाम से फिल्म बनाई। 'दो बैलों की कथा' कहानी पर 'हीरा- मोती' फिल्म बनी जो वैश्विक स्तर पर सराही गई । भगवती चरण वर्मा के प्रसिद्ध उपन्यास 'चित्रलेखा’ पर भी कई फिल्में बनी जो सफल भी रही। बांग्ला लेखक शरतचंद्र के उपन्यास’ देवदास’ पर हिंदी में 10 से अधिक फिल्में बनी जिनमें से तीन फिल्में काफी सफल भी रही। मनु भंडारी की 'आपका बंटी' और 'महाभोज', भीष्म साहनी के उपन्यास 'तमस', धर्मवीर भारती के उपन्यास 'सूरज का सातवां घोड़ा' और 'गुनाहों का देवता' पर भी फिल्में बनाई गई। आर. के नारायण के उपन्यास 'गाइड' पर देवानंद के भाई विजय आनंद ने 'गाइड' फिल्म बनाई इसके अलावा अन्य भारतीय भाषाओं में भी साहित्य पर बनाई गई फ़िल्में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। 1962 में आई फिल्म 'साहिब बीवी और गुलाम' पर बंगाली लेखक विमल मित्र के उपन्यास ‘साहब बीवी और गुलाम’ पर आधारित थी। ऋषिकेश मुखर्जी ने शरतचंद्र चट्टोपाध्याय के उपन्यास 'मेजदीदी’ पर आधारित 1967 में फिल्म 'मझली दीदी' बनाई थी। रवींद्रनाथ टैगोर के उपन्यासों 'नौका डूबी' , 'काबुलीवाला' का फिल्मांकन इन्हीं नामों से हुआ। बासु भट्टाचार्य ने कुसुम अंसल के उपन्यास 'एक और पंचवटी ' पर पंचवटी फ़िल्म बनाई। के. ए. अब्बास के उपन्यासों पर राजकपूर ने 'नई रोशनी', 'रोटी' , 'नया जमाना' , आदि फिल्में बनाई। दीपा मेहता की '1947 अर्थ' की बापसी सिदवा की नोबेल ट्रैकिंग इंडिया पर आधारित थी, अमृता प्रीतम जी के उपन्यास 'पिंजर’ पर इसी नाम से पिंजर फिल्म बनी। वर्ष 2003 में बनी इस फिल्म को 3 भाषाओं हिंदी, उर्दू, और पंजाबी में बनाया गया। निर्देशक विशाल भारद्वाज की अधिकांश फिल्में उपन्यास आधारित रही है। इसमें खासकर शेक्सपियर और रस्किन बॉन्ड के उपन्यासों का इस्तेमाल हुआ। विशाल भारद्वाज की ही फिल्म ‘मकबूल’ शेक्सपियर के नाटक 'मैकबेथ’ पर आधारित थी। वहीं ‘ओमकारा’, 'ओथेलो’ पर बेस्ड थी और 'हैदर’, 'हेमलेट’ पर आधारित थी। इसी तरह फिल्म 'सात खून माफ' रस्किन बॉन्ड की कहानी 'सुजैना हस्बैंड' और 'द ब्लू अंब्रेला ' भी रस्किन बॉन्ड की कहानी थी। चेतन भगत के उपन्यास पर भी फिल्मों का निर्माण हुआ है और वर्तमान में भी हो रहा है। 'फाइव प्वाइंट समवन' पर बेस्ड 'थ्री इडियट' , ' थ्री मिस्टेक्स ऑफ माय लाइफ' पर बेस्ड 'काय पो चे' , 'वन नाइट एट कॉलसेंटर' पर आधारित फिल्म ' हेलो' और 'टू स्टेट्स' पर फिल्म बन चुकी हैं। साहित्यकारों की निराशा का एक बड़ा कारण यह भी है कि वे बंधनों में बंधकर काम करना पसंद नहीं करते हैं। क्योंकि फिल्म के निर्देशक - निर्माता के दबाव में कहानी में बदलाव करने पड़ते हैं। नई कहानी में अति नाटकीयता और अतिरंजना बढ़ाने के कारण कहानी या उपन्यास की मूल आत्मा ही नष्ट कर दी जाती है। लेकिन 90 के दशक में आई भूपेन हजारीका की फिल्म ' रूदाली’ ने साहित्य और सिनेमा के संबंध में इस धारणा को पुनः स्थापित किया कि साहित्य से जुड़ी हुई और समाज का वास्तविक अंकन करने वाली फिल्में भी सफल हो सकती हैं । बाद में 'परिणीता' और 'थ्री ईडियट्स' जैसी फिल्मों ने इस धारणा को और भी पुष्ट किया।

 साहित्य को आधार बनाकर बनी फिल्मों का अनुभव अच्छा या बुरा जो भी रहा हो मगर एक बात निश्चित है कि उसके लिए विषय की विविधता साहित्य से ही प्राप्त है। साहित्य और सिनेमा दोनों का हमारे जीवन पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है और संवेदनशील व्यक्ति को इन दोनों कलाओं के पात्र बेहद प्रभावित करते हैं। दोनों ही कलाओं ने सृजनात्मक स्तर पर एक- दूसरे को गहरे रूप से प्रभावित किया है। साहित्यिक रचनाओं पर आधारित सिनेमा की अपनी एक खास परंपरा है। साहित्य और सिनेमा की तकनीक, प्रस्तुति, निर्माण प्रक्रिया आदि को लेकर आने वाली चुनौतियों को गंभीरता से लेना होगा और साहित्यकारों को सिनेमा की तकनीकी आवश्यकताओं के बारे में जानना होगा ,ताकि चित्रपट की आवश्यकताओं के मुताबिक पटकथा लेखन करने में वे भी सजग हों। सिनेमा और साहित्य के बीच एक स्वस्थ संबंध बनाए रखना आवश्यक है। वे एक- दूसरे की सृजनात्मक संभावनाओं का सम्मान करें और भिन्न माध्यमों के कारण उनके बीच आने वाली दूरी को कम करने में एक - दूसरे का सहयोग करें।

 अंत में हम कह सकते हैं कि साहित्य और सिनेमा दोनों का आपस में बहुत घनिष्ट संबंध है। बिना साहित्य के सिनेमा की कल्पना भी नहीं कर सकते और सिनेमा, साहित्य को कालजयी और लोकप्रिय बनाकर उसको नई बुलंदियों के मुकाम पर पहुँचाने का एक शक्तिशाली माध्यम है।

 डॉ. विकास शर्मा,

 असिस्टेंट प्रोफेसर,

 हिन्दी विभाग,

 शिवाजी कॉलेज, दिल्ली -विश्वविद्यालय